

अध्याय-२४



श्री बाबा का हास्य विनोद, चने की लीला (हेमाडपंत), सुदामा की कथा, अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई की कथा, बाबा की भक्त-परायणता।

प्रारम्भ

अगले अध्याय में अमुक-अमुक विषयों का वर्णन होगा, ऐसा कहना एक प्रकार का अहंकार ही है। जब तक अहंकार गुरुचरणों में अर्पित न कर दिया जाए, तब तक सत्यस्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं। यदि हम निरभिमान हो जाएँ तो सफलता प्राप्त होना निश्चित ही है।

श्री साईबाबा की भक्ति करने से ऐहिक तथा आध्यात्मिक दोनों पदार्थों की प्राप्ति होती है और हम अपनी मूल प्रकृति में स्थिरता प्राप्त कर शांति और सुख के अधिकारी बन जाते हैं। अतः मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे आदरसहित श्री साईबाबा की लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करें। यदि वे इसी प्रकार प्रयत्न करते रहेंगे तो उन्हें अपने जीवन-ध्येय तथा परमानंद की सहज ही प्राप्ति हो जाएगी।

प्रायः सभी लोगों को हास्य प्रिय होता है, परन्तु स्वयं हास्य का पात्र कोई नहीं बनना चाहता। इस विषय में बाबा की पद्धति भी विचित्र थी। मनोविनोद जब भावपूर्ण होता तो अति मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद होता था। इसीलिए भक्तों को यदि स्वयं हास्य का पात्र बनना भी पड़ता था तो उन्हें उसमें कोई आपत्ति न होती थी। श्री हेमाडपंत भी ऐसा एक अपना ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

चना लीला

शिरडी में बाजार प्रति रविवार को लगता है। निकटवर्ती ग्रामों से लोग आकर वहाँ रास्तों पर दुकानें लगाते और सौदा बेचते हैं। मध्याह्न के समय मस्जिद लोगों से ठसाठस भर जाया करती थी, परन्तु रविवार

के दिन तो लोगों की इतनी अधिक भीड़ होती कि प्रायः दम ही घुटने लगता था। ऐसे ही एक इतवार के दिन श्री हेमाडपंत बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे। शामा बाबा के बाईं ओर व वामनराव बाबा के दाहिनी ओर थे। इस अवसर पर श्रीमान् बूटीसाहेब और काकासाहेब दीक्षित भी वहाँ उपस्थित थे। तब शामा ने हँसकर अण्णासाहेब से कहा कि, “देखो, तुम्हारे कोट की बाँह पर कुछ चने लगे हुए-से प्रतीत होते हैं।” - ऐसा कहकर शामा ने उनकी बाँह स्पर्श की, जहाँ कुछ चने के दाने मिले।

जब हेमाडपंत ने अपनी बाईं कुहनी सीधी की तो चने के कुछ दाने लुढ़क कर नीचे भी गिर पड़े, जो उपस्थित लोगों ने बीन कर उठाये।

भक्तों को तो हास्य का विषय मिल गया और सभी आश्चर्यचकित होकर भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगे, परन्तु कोई भी यह न जान सका कि ये चने के दाने वहाँ आए कहाँ से और इतने समय तक उसमें कैसे फँसे रहे? इसका संतोषप्रद उत्तर किसी के पास न था, परन्तु इस रहस्य का भेद जानने को हर कोई उत्सुक था। तब बाबा कहने लगे कि, “इन महाशय-अण्णासाहेब को एकांत में खाने की बुरी आदत है। आज बाजार का दिन है और ये चने चबाते हुए ही यहाँ आए हैं। मैं तो इनकी आदतों से भली भाँति परिचित हूँ और ये चने मेरे कथन की सत्यता के प्रमाण हैं। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?” हेमाडपंत बोले कि “बाबा, मुझे कभी भी एकांत में खाने की आदत नहीं है, फिर इस प्रकार मुझ पर दोषारोपण क्यों करते हैं? अभी तक मैंने शिरडी के बाजार के दर्शन भी नहीं किये तथा आज के दिन तो मैं भूल कर भी बाजार नहीं गया, तब उनके खाने की बात तो दूर है। भोजन के समय भी जो मेरे निकट होते हैं, उन्हें उनका उचित भाग दिये बिना मैं कभी भोजन ग्रहण नहीं करता।”

बाबा - “तुम्हारा कथन सत्य है। परन्तु जब तुम्हारे समीप ही कोई न हो तो तुम या हम कर ही क्या सकते हैं? अच्छा, बताओ, क्या भोजन करने से पूर्व तुम्हें कभी मेरी स्मृति भी आती है? क्या मैं सदैव तुम्हारे साथ नहीं हूँ? फिर क्या तुम पहले मुझे ही अर्पण कर भोजन

किया करते हो?’’

शिक्षा

इस घटना द्वारा बाबा क्या शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, थोड़ा इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसका सारांश यह है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि द्वारा पदार्थों का रसास्वादन करने के पूर्व बाबा का स्मरण करना चाहिए। उनका स्मरण ही अर्पण की एक विधि है। इन्द्रियाँ विषय पदार्थों की चिन्ता किये बिना कभी नहीं रह सकतीं। इन पदार्थों को उपभोग से पूर्व ईश्वरार्पण कर देने से उनकी आसक्ति स्वभावतः नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार समस्त इच्छाएँ, क्रोध और तृष्णा आदि कुप्रवृत्तियों को पहले ईश्वरार्पण कर गुरु की ओर मोड़ देना चाहिए। यदि इसका नित्याभ्यास किया जाए तो परमेश्वर तुम्हारी कुवृत्तियों के दमन में सहायक होंगे। विषय के रसास्वादन के पूर्व वहाँ बाबा की उपस्थिति का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। तब विषय उपभोग के उपयुक्त है या नहीं, यह प्रश्न उपस्थित हो जाएगा और आचरण में सुधार होगा। इसके फलस्वरूप गुरुप्रेम में वृद्धि होकर शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होगी। जब इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि होती है तो दैहिक बुद्धि नष्ट हो चैतन्यघन में लीन हो जाती है। वस्तुतः गुरु और ईश्वर में कोई पृथक्त्व नहीं है, और जो उन्हें भिन्न समझता है, वह तो निरा अज्ञानी है तथा उसे ईश्वर-दर्शन होना भी दुर्लभ है। इसलिए समस्त भेदभाव को भूल कर, गुरु और ईश्वर को अभिन्न समझना चाहिए। इस प्रकार गुरु सेवा करने से ईश्वर-कृपा प्राप्त होना निश्चित ही है और तभी वे हमारा चित्त शुद्ध कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करेंगे। सारांश यह है कि ईश्वर और गुरु को पहले अर्पण किये बिना हमें किसी भी इन्द्रियग्राह्य विषय का रसास्वादन न करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। फिर श्री साईबाबा की मनोहर सगुण मूर्ति सदैव आँखों के सम्मुख रहेगी, जिससे भक्ति, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति शीघ्र हो जाएगी। ध्यान प्रगाढ़ होने से क्षुधा और संसार के अस्तित्व की विस्मृति हो जाएगी और सांसारिक विषयों का आकर्षण स्वतः नष्ट होकर चित्त को सुख और शांति प्राप्त होगी।

सुदामा की कथा

उपर्युक्त घटना का वर्णन करते-करते हेमाडपंत को इसी प्रकार की सुदामा की कथा याद आई, जो ऊपर वर्णित नियमों की पुष्टि करती है। श्रीकृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम तथा अपने एक सहपाठी सुदामा के साथ संदीपनि ऋषि के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। एक बार कृष्ण और बलराम लकड़ियाँ लाने के लिए वन गए। संदीपनि ऋषि की पत्नी ने सुदामा को भी उसी कार्य के निमित्त वन भेजा तथा तीनों विद्यार्थियों के खाने को कुछ चने भी उन्होंने सुदामा के द्वारा भेजे। जब कृष्ण और सुदामा की भेंट हुई तो कृष्ण ने कहा, “दादा, मुझे थोड़ा जल दीजिये, प्यास अधिक लग रही है।” सुदामा ने कहा, “**भूखे पेट जल पीना हानिकारक होता है**, इसलिए पहले कुछ देर विश्राम कर लो।” सुदामा ने चने के संबंध में न कोई चर्चा की और न कृष्ण को उनका भाग ही दिया। कृष्ण थके हुए तो थे ही, इसलिए सुदामा की गोद में अपना सिर रखते ही वे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गए। तभी सुदामा ने अवसर पाकर चने चबाना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में अचानक कृष्ण पृष्ठ बैठे कि, “दादा, तुम क्या खा रहे हो और यह कड़कड़ की ध्वनि कैसी हो रही है?” सुदामा ने उत्तर दिया कि “यहाँ खाने को है ही क्या? मैं तो शीत से काँप रहा हूँ और इसलिए मेरे दाँत कड़कड़ बज रहे हैं। देखो तो, मैं अच्छी तरह से विष्णुसहस्रनाम भी उच्चारण नहीं कर पा रहा हूँ।” यह सुनकर अन्तर्यामी कृष्ण ने कहा कि, “दादा, मैंने अभी स्वप्न में देखा कि एक व्यक्ति दूसरे की वस्तुएँ खा रहा है। जब उससे इस विषय में प्रश्न किया गया तो उसने उत्तर दिया कि, ‘मैं खाक (धूल) खा रहा हूँ।’ तब प्रश्नकर्ता ने कहा, ‘ऐसा ही हो’ (एवमस्तु)। दादा, यह तो केवल स्वप्न था, **मुझे तो ज्ञात है कि तुम मेरे बिना अन्न का दाना भी ग्रहण नहीं करते**, परंतु श्रम के वशीभूत होकर मैंने तुम से ऐसा प्रश्न किया था।” यदि सुदामा किंचित् मात्र भी कृष्ण की सर्वज्ञता से परिचित होते तो वे इस भाँति आचरण कभी न करते। श्रीकृष्ण के लँगोटिया मित्र होते हुए भी सुदामा को अपना शेष जीवन दरिद्रता में व्यतीत करना पड़ा, परन्तु केवल एक ही मुट्ठी रूखे चावल (पोहा), जो उनकी स्त्री

सुशीला ने अत्यन्त परिश्रम से उपाजित किए थे, भेंट करने पर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हो गए और उन्हें उसके बदले में सुवर्णनगरी प्रदान कर दी। जो दूसरों को दिये बिना एकांत में खाते हैं, उन्हें इस कथा को सदैव स्मरण रखना चाहिए।

श्रुति भी इस मत का प्रतिपादन करती है कि प्रथम ईश्वर को ही अर्पण करें तथा उच्छिष्ट हो जाने के उपरांत ही उसे ग्रहण करें। यही शिक्षा बाबा ने हास्य के रूप में दी है।

अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई

अब श्री हेमाडपंत एक दूसरी हास्यपूर्ण कथा का वर्णन करते हैं, जिसमें बाबा ने शान्ति-स्थापन का कार्य किया है। दामोदर घनश्याम बाबरे, उपनाम अण्णा चिंचणीकर बाबा के भक्त थे। वे सरल, सुदृढ़ और निर्भीक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे निडरतापूर्वक स्पष्ट भाषण करते और व्यवहार में सदैव नगद नारायण-से थे। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से वे रूखे और असहिष्णु प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से कपटहीन और व्यवहार-कुशल थे। इसी कारण बाबा उन्हें विशेष प्रेम करते थे। सभी भक्त अपनी-अपनी इच्छानुसार बाबा के अंग-अंग को दबा रहे थे। बाबा का हाथ कठड़े पर रखा हुआ था। दूसरी ओर एक वृद्ध विधवा उनकी सेवा कर रही थीं, जिनका नाम वेणुबाई कौजलगी था। बाबा उन्हें 'माँ' शब्द से सम्बोधित करते तथा अन्य लोग उन्हें मौसीबाई कहते थे। वे एक शुद्ध हृदय की वृद्ध महिला थीं। वे उस समय दोनों हाथों की अँगुलियाँ मिलाकर बाबा के शरीर को मसल रही थीं। जब वे बलपूर्वक उनका पेट दबातीं तो पेट और पीठ का प्रायः एकीकरण हो जाता था। बाबा भी इस दबाव के कारण यहाँ-वहाँ सरक रहे थे। अण्णा दूसरी ओर सेवा में व्यस्त थे। मौसीबाई का सिर हाथों की परिचालन क्रिया के साथ नीचे-ऊपर हो रहा था। जब इस प्रकार दोनों सेवा में जुटे थे तो अनायास ही मौसीबाई का मुख अण्णा के अति निकट आ गया। मौसीबाई विनोदी प्रकृति की होने के कारण ताना देकर बोलीं कि, "यह अण्णा बहुत बुरा व्यक्ति है और यह मेरा चुम्बन करना चाहता है। इसके केश तो पक गए हैं, परन्तु मेरा चुम्बन करने

में इसे तनिक भी लज्जा नहीं आती है।” यह सुनकर अण्णा क्रोधित होकर बोले, “तुम कहती हो कि मैं एक वृद्ध और बुरा व्यक्ति हूँ। क्या मैं मूर्ख हूँ? तुम खुद ही छेड़खानी करके मुझसे झगड़ा कर रही हो?” वहाँ उपस्थित सब लोग इस विवाद का आनन्द ले रहे थे। बाबा का स्नेह तो दोनों पर था, इसलिये उन्होंने कुशलतापूर्वक विवाद का निपटारा कर दिया। वे प्रेमपूर्वक बोले, “अरे अण्णा, व्यर्थ ही क्यों झगड़ रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता कि माँ का चुम्बन करने में दोष ही क्या है?”

बाबा के शब्दों को सुनकर दोनों शान्त हो गए और सब उपस्थित लोग जी भरकर ठहाका मारकर बाबा के विनोद का आनन्द लेने लगे।

बाबा की भक्त-परायणता

बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही सेवा करने दिया करते थे और इस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप उन्हें सहन न था। एक अन्य अवसर पर मौसीबाई बाबा का पेट बलपूर्वक मसल रही थीं, जिसे देख कर दर्शकगण व्यग्र होकर मौसीबाई से कहने लगे कि “माँ! कृपा कर धीरे-धीरे ही पेट दबाओ। इस प्रकार मसलने से तो बाबा की अंतड़ियाँ और नाड़ियाँ ही टूट जाएँगी।” वे इतना कह भी न पाये थे कि बाबा अपने आसन से तुरन्त उठ बैठे और अंगारे के समान लाल आँखें कर क्रोधित हो गए। साहस किसे था, जो उन्हें रोके? उन्होंने दोनों हाथों से सटके का एक छोर पकड़ नाभि में लगाया और दूसरा छोर जमीन पर रख उसे पेट से धक्का देने लगे। सटका (सोटा) लगभग २ या ३ फुट लम्बा था। अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह पेट में छिद्र कर प्रवेश कर जाएगा। लोग भयभीत हो उठे कि अब पेट फटने ही वाला है। बाबा अपने स्थान पर दृढ़ हो, उसके अत्यन्त समीप होते जा रहे थे और प्रतिक्षण पेट फटने की आशंका हो रही थी। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। वे आश्चर्यचकित और भयभीत हो ऐसे खड़े थे, मानो गूँगों का समुदाय हो। यथार्थ में भक्तगण का संकेत मौसीबाई को केवल इतना ही था कि वे सहज रीति से सेवा-शुश्रूषा करें। किसी की इच्छा बाबा को कष्ट पहुँचाने की न थी। भक्तों ने तो यह कार्य केवल

सदभावना से प्रेरित हो कर ही किया था। परंतु बाबा तो अपने कार्य में किसी का हस्तक्षेप कण मात्र भी ना होने देना चाहते थे । भक्तों को आश्चर्य हो रहा था कि शुभ भावना से प्रेरित कार्य दुर्गति में परिणीत हो गया था , और वे केवल दर्शक बने रहने के इलावा कर ही क्या सकते थे । भाग्य वश बाबा का क्रोध शान्त हो गया और सटका छोड़ कर वे पुनः आसन पर विराजमान हो गये । इस घटना से भक्तों ने शिक्षा ग्रहण की कि अब दूसरों के कार्य में कभी भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे , और सबको उनकी इच्छा अनुसार ही बाबा की सेवा करने देंगे । केवल बाबा ही सेवा का मूल्य आंकने में समर्थ थे ।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥